

पसायदान

(ज्ञानेश्वरी अध्याय १८ ओवी १७९४ ते १८०२)

आतां विश्वात्मके देवें | येणें वाग्यज्ञें तोषावें |
तोषोनि मज दारवें | पसायदान हें ||१||
जे खळांची व्यंकटी सांडो | तयां सत्कर्मिं रती वाढो |
भूतां परस्परें पडो | मैत्र जीवाचें ||२||
दुरिताचें तिमिर जावो | विश्व स्वधर्मसूर्य पाहो |
जो जें वांछील तो तें लाहो | प्राणिजात ||३||
वर्षत सकळमंगळीं | ईश्वर निष्ठांची मांदियाळी |
अनवरत भूमंडळीं | भेटतु या भूतां ||४||
चलां कल्पतरूंचे अरव | चेतना चिंतामणीचें गांव |
बोलते जे अर्णव | पीयूषाचे ||५||
चंद्रमे जे अलांछन | मार्तंड जे तापहीन |
ते सर्वाही सदा सज्जन | सोयरे होतु ||६||
किंबहुना सर्वसुखीं | पूर्ण होऊनि तिहीं लोकीं |
भजिजो आदिपुरुखीं | अखंडित ||७||
आणि ग्रंथोपजीविये | विशेषीं लोकीं इयें |
दृष्टादृष्ट विजयें | होआवें जी ||८||
तेथ म्हणे श्रीविश्वेशरावो | हा होईल दानपसावो |
येणें वरें ज्ञानदेवो | सुखिया झाला ||९||